© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 05 | May 2018

भारतीय दलित साहित्य पर एक विवेचना

डॉ जागृति

चाणक्यपुरी, अहियापुर, पोस्ट- उमानगर, मुजफ्फरपुर |

सार

हिंदी में दलित साहित्य लिखने की परंपरा नौवें दशक से शुरू होती है । कुछ लोगों की यह धारणा है कि हिंदी दलित साहित्य का उदगम मराठी दलित साहित्य से हुआ है यानि हिंदी दलित साहित्य पर मराठी दलित साहित्य की संपूर्ण छाप है, पर इनकी धारणा पूरी तरह सच नहीं है । हिंदी दलित साहित्य के उद्भव के पीछे नाथ और सिद्ध कवियों की महत्वपूर्ण भूमिका देखने को मिलती है । सिद्ध कवियों में बहुत सारे कवि शुद्र थे, जिन्होंने अपनी तत्कालीन पीड़ा का परिप्रकाशन किया था । इतना ही नहीं मध्यकाल में निर्गुण संत रैदास जैसे कवि ने खुद वर्ण व्यवस्था के शिकार होकर इसके खिलाफ आवाज उठायी थी । दलितों में चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया था । इस दृष्टि से उन्हें मध्यकाल में प्रथम दलित चेतना संपन्न कवि माना जाता है । वस्तुत: हिंदी दलित कविता मध्यकाल के निर्गुण संत कवि रैदास और कबीर से शुरू होकर 'हीराडोम' और 'अछूतानंद' तक आयी ।

मुख्य शब्द : भारतीय, दलित, साहित्य, मध्यकाल इत्यादि।

प्रस्तावना

दलित' शब्द का संकुचित अर्थ

'दलित' संज्ञा के बारे में संकुचित या सीमित अर्थ की दृष्टि से सोचने वालों का कहना है कि अस्पृश्य, हरिजन, आदिवासी ही 'दलित' है, जिन्हे युगों से उच्च वर्गों के पैसों तले कुचला है। उनका स्पर्श होना भी निषेध माना है । प्राचीनकाल में 'दलित' शब्द शुद्रों एवं अस्पृश्यों तक ही सीमीत था । इस अर्थ के अनुसार विशिष्ट जातियों, जमातें और हरिजन लोगों का समावेश दलितों के अन्तर्गत होता है। इस विचार के अनुसार प्रा.केशव मेश्राम ने एक साहित्य सम्मेलन में अपना मत देते हुए कहा था 'हजारें वस्स जिन पर अन्याय हुआ ऐसे अस्पृश्वों को 'दलित' कहना चाहिए।' यहाँ 'दलित' शब्द को अति व्यापकता से निकालकर सीमित क्षेत्र में रखने का प्रयास किया गया है । अंग्रेजी में 'डीप्रेस्ड क्लासीस' शब्द का प्रयोग अस्पृश्य जातियों के अर्थ में होता है । श्री स्वामी विवेकानन्द एनी वेसेन्ट

तथा रानाडे ने अपने भाषणों में सम्बोधित किया है। 'डिप्रेस्ड क्लास' के अन्तर्गत ऐसा मनुष्य आता है कि जिसे कुचला गया है और जिसका स्पर्श तक दूषित माना जाता है। यह अर्थ अस्पृश्य अलुष्य पर लागू होता है। इस प्रकार 'दलित' शब्द के संकुचित अर्थ के अन्तर्गत केवल निम्नवर्ग के अस्पृश्य लोगों का समावेश होता है।

दलित साहित्य से तात्पर्य दलित जीवन और उसकी समस्याओं पर लेखन को केन्द्र में रखकर हुए साहित्यिक आंदोलन से है। दलितों को हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर होने के कारण न्याय, शिक्षा, समानता तथा स्वतंत्रता आदि मौलिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया। उन्हें अपने ही धर्म में अछूत या अस्पृश्य माना गया। दलित साहित्यकारों में से अनेकों ने दलित पीड़ा को कविता की शैली में प्रस्तुत किया। कुछ विद्वान 1914 में 'सरस्वती' पत्रिका में हीरा डोम द्वारा लिखित 'अछूत की शिकायत' को पहली दलित कविता मानते हैं। कुछ अन्य विद्वान स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' को पहला दलित कवि कहते हैं, उनकी कविताएँ 1910 से 1927 तक लिखी गई। उसी श्रेणी मे 40 के दशक में बिहारी लाल हरित ने दलितों की पीड़ा को कविता-बद्ध ही नहीं किया, अपितु अपनी भजन मंडली के साथ दलितों को जाग्रत भी किया।

दलित साहित्य दलितों में जीवन और उनकी समस्याओं को केन्द्र में रख कर दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य है। वास्तव में देखा जाये तो दलित साहित्य सामाजिक अन्याय के विरुद्ध विद्रोह और आक्रोश है। यदि दलित समस्याओं पर लिखता है तो उसमें सहानुभूति, यदि गैर-दलित लेखक दलित साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए कुछ दलित लेखकों के विचार पर ध्यान देना जरूरी है। दलित साहित्य के स्वरूप का रेखांकन करते हुए कुंवलभारती ने लिखा है -"दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को स्थापित किया है, अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उसी की अभिव्यक्ति करता है .... यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का ओर जीवन की जीविषा का साहित्य है"। यह कहना तर्क संगत है कि जीवन भर सामाजिक विधि व्यवस्था से पीड़ित अछूत या नीच कहे जाने वाले लोगों में सदियों से संचित विद्रोह की भावना दलित साहित्य में दलितों की लेखनी से भड़क उठी है। दलित साहित्य की अवधारणा पर अपना विचार विशिष्ट दलित साहित्यकार डॉ. दयानन्द बटोही में अनुरूप भावना पाई जाती है। उनके शब्दों में - "दलित साहित्य दलितों की चेतना को

अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसमें दलित मानवता का स्वर है। एक नकार है। एक विद्रोह है। यह विद्रोह उस व्यवस्था के प्रति है जो सदियों से दलितों का शोषण कर लाभ की स्थिति में है।" दलित साहित्य में गांवों का ज्यादातर वर्णन देखने को मिलता है। हर गांव में दलितों की बस्ती है। दलितों की बस्तियाँ प्राय: गांव के बाहर ही होती हैं। इनके लिए अलग कूँआ, अलग श्मशान भी होता है। इससे गांव में दलितों के प्रति अन्य सवर्ण जातियों का मनोभाव स्पष्ट हो जाता है। दलित साहित्य शरण कुमार ने हंस पत्रिका में लिखा है -"दलित साहित्य का जन्म अस्पृश्यता की कोख से हुआ है।" इसी बात को स्पष्ट करते हुए वे आगे भी कहते हैं कि दलितों की परेशानी, गुलामी, पारिवारिक विघटन, दुःख, गरीबी और उपेक्षापूर्ण जीवन का वास्तविक चित्रत् करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। पीड़ा और आह का उदात्त स्वरूप अर्थात् दलित साहित्य है। दलित साहित्यकारों का मानना है कि एक दलित साहित्यकार ही अपने जीवनाभव को लेकर दलित साहित्य लिख सकता है। दलित साहित्य दलितों को हृदयहीन ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था के भेदभाव से मुक्ति दिलाने के लिए लिखा जाता है। दलितों को आज भी गैर दलित की सहानुभूति एवं करूणा में बहुत कम विश्वास है। नीलम सिंह द्वारा प्रस्तुत दलित विमर्श : सिद्धांत - स्वरूप - प्रासंगिता' लेख में भग्न सिंह से कही गई बात इस सत्य को प्रतिपुष्टि करती है।

अधिकांश दलित साहित्यकार दलित चेतना और दलितों की अभिव्यजन में अम्बेडकर की मुख्य प्रेरणा स्रोत मानते हैं। वस्तुत: महाराष्ट्र में कठोर ब्राह्मणवाद से सदियों से पीड़ित, अवहेलित, घृणित दलितों के अंधकार पूर्ण जीवन में अम्बेडकर ने ही रोशनी के दीये जलाये। उनमें सामाजिक अन्याय और अनीति के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत जगायी। प्रतिभाधर अवहेलित दलितों की सुषुप्त प्रतिभा का परिप्रकाश भर समाज में उन्हें सवर्णों की तरह सीना तानकर चलना सिखाया। स्वातंत्रयोत्तर भारत में दलितों में जो सुधार आया है, दलित साहित्य में जो व्यापकता आई है। इसमें सबसे अधिक श्रेय अम्बेडकरजी को ही है। ओमप्रकाश बाल्मीकि ने इस संदर्भ में अपनी पुस्तक "दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' में कहा है -दलितों की संस्कृति में गुण -दोष हो सकते हैं लेकिन इतना तो निश्चित है, कल का दलित और आज का दलित भिन्न है। यही अन्तर सांस्कृतिक निष्ठा का निर्माण कर रहा है। देवी -देवताओं में श्रद्धा भाव, मंदिर, पुनर्जन्म्, मनुष्य और मनुष्य के बीच घृणा भाव उत्पन्न करने वाले धर्म शाखर, ग्रंथ, महाकाव्य, नर्क-स्वर्ग, मनुष्य को गुलाम बनाने

वाले प्रपंच, कर्मकांड को नकारते हुए आज का दलित अपनी अलग पहचान और संस्कृति के मूल आधार हैं । इन सवालों से ही दलित चेतना का उद्गम है और डॉ. अम्बेडकर के जीवन-दर्शन, सामाजिक संघर्ष से ऊर्जा पाकर साहित्यिक अभिव्यक्ति में परिवर्तन हुआ है ।" डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवन काल में 'दी अनट्चेबल्स, हू आर दे , एण्ड वई दे बीकेम अनटचेबल्स', बुद्ध एण्ड हिज धम्म, व्हाट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव इन टू दी अनट्चेबल्स, स्टेटस एण्ड माधनरटीज, आदि बारह पुस्तकों की रचना की । दलितों पर अम्बेडकर के जीवन दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा ।

भारतीय दलित साहित्य :

स्वतंत्रता पूर्व भारत में दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी । स्वातंत्रयोत्तर काल में इनकी स्थिति में थोड़ा बहुत परिवर्तन आया । अंग्रेजों के शासनकाल में दलितों की स्थिति में सुधार लाने में जहाँ एक ओर तत्कालीन बुद्धिजीवि समाज सुधारक राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, राममनोहर लोहिया, ईश्वरचन्द्र विद्यसागर, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों का भारसक प्रयास देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता पूर्व और बाद फकीर मोहन सेनापति, गोपीनाथ महांति, प्रेमचन्द, रेणु, अमृतलाल नागर, जगदीशचन्द्र, गिरिराज किशोर, निराला, धूमिल, नागार्जुन जैसे कवि विशिष्ट साहित्यकारों ने दलितों की व्यथा-कथा को बड़ी संवेदना के साथ उभारने का सफल प्रयास किया था । इससे पहले यहाँ के संत साहित्य में भी दलितों के प्रति संवेदना आहरण उनमें चेतना जागृत करने का प्रयास जारी था । संत कवि कबीर और रैदास ने समाज में ब्राह्मणों के दलितों पर अन्याय -अत्याचार का बखूबी चित्रण के साथ उनकी असलियत का पर्दापाश कर उन पर निमर्मम प्रहार किया था । वस्तुत: इन दो संतों को हिन्दी साहित्य में दलितों का अग्रदूत माना है । प्रेमचन्द की रचनाओं में दलितों के प्रति संवेदना और उनमें चेतना उत्पन्न करने का अनुरूप चित्रण देखने को मिलता है । इसलिए प्रेमचन्द दलितों के पक्षधर माने जाते हैं । इतना ही नहीं राष्ट्रीय स्तर पर कई भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों ने इस दिशा में अपनी -अपनी लेखनी चलाई थी । ओड़िआ साहित्य के विशिष्ट कथाकार गोपीनाथ महांति ने 'हरिजन', 'परजा', अमृत संतान' जैसे महाकाव्यात्मक उपन्यासों में आदिवासी जन जातियों के दु:ख, परेशानियों, सामाजिक यातनाओं को बड़ी बारीकी से रेखांकन कर समाज में आलोड़न उत्पन्न किया था।

उपसंहार

दलित जीवन और उनकी समस्याओं पर गैर दलित, जैसे प्रेमचन्द, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, गिरिराज किशोर, जगदीश चन्द्र आदि ने लिखा है और दलित लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि, मोहन दास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन आदि ने भी लिखा है। किन्तु उनकी अन्तर्वस्तु में इनके द्वारा अर्जित और प्रतिष्ठित मूल्यों में और उस अनुभव की प्रक्रिया की व्याख्या में गहरा फर्क है। जाहिर है, इन मूल्यों की प्रकृति और प्रक्रिया में वर्णणेद अहम भूमिका अदा करता है। उनके अपने आग्रह और संस्कारिक मूल्य मानन्यताएँ कृति की समग्रता में अपने निष्कर्ष स्थापित करती हैं, उसे प्रभावित करती हैं। यह सब एक विशिष्ट सतर्कता के रूप में प्रस्तुत होकर अपनी विशिष्टता रेखांकित करता हैं। अनुरूप विचार भी केवल भारती में देखने को मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1] नागार्जुन : मेरे बाबूजी, शोभाकांत, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण - 2011, पृ.-17

[2] आलोचना, डॉ. नामवर सिंह, अंक - 56 - 57, पृ. - 2

[3] बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन रचनावली - 4, सं. - शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2003, पृ.- 404

[4] बलचनमा, नागार्जुन रचनावली - 4, सं. - शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2003, पृ. - 130

[5] नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : समसामयिक संदर्भ - डॉ. सुरेंद्र कुमार यादव, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 2001, पृ.-19 उपरोक्त, पृ.-143

[6] बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन रचनावली - 4, सं. - शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 2003, पृ. - 391

[7] बलचनमा, नागार्जुन रचनावली - 4, पृ. - 128

[8] बाबा बटेसरनाथ, पृ. -377 नई पौध - पृ. - 255